विज्ञान के पथिक - आचार्य जगदीशचंद्र बोस

नवनीत कुमार गुप्ता

भारत के अनेक वैज्ञानिकों ने पूरे विश्व में अपने कार्यों से पहचान बनाई है। ऐसे ही वैज्ञानिकों में जगदीशचंद्र बोस का नाम भी शामिल है। जगदीशचंद्र बोस को जे.सी. बोस के नाम से भी जाना जाता है। आचार्य जे.सी. बोस के समकालीनों में रविन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द और राजा राम मोहन राय जैसे महान लोग थे। वह समय बौद्धिक क्रांति का था। और यही वह समय भी था जब देश में विज्ञान शोध कार्य लगभग नहीं के बराबर थे। ऐसी परिस्थितियों में जगदीशचंद्र बोस ने विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक योगदान दिया। उस समय तक देश में इस तरह का काम किसी ने शुरू तक नहीं किया था। जगदीशचंद्र बोस का योगदान दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों में रहा। पहला उन्होंने बहुत छोटी तरंगें उत्पन्न करने का तरीका दिखाया और दूसरा हेनरिक हट्ज़ के रिसीवर को एक उन्नत रूप दिया।

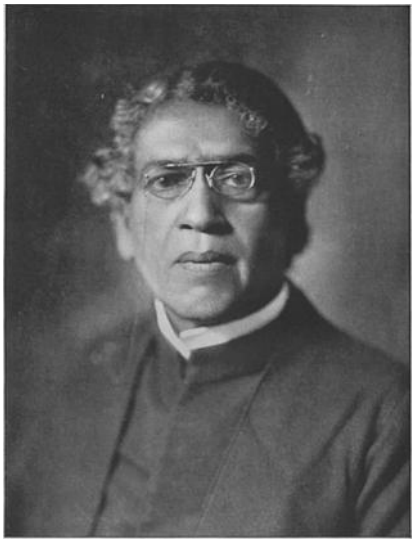

30 नवम्बर 1858 को जन्मे जे.सी. बोस का बचपन गांव ररौली में गुज़रा, जो अब बांग्लादेश में है। जब वे छोटे थे तब उन्हें तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े और मछलियां पकड़ने का शौक था। उन्हें पानी में रहने वाले सांपों को भी पकड़ने का शौक था। उन सांपों को देखकर उनकी बड़ी बहन अक्सर डर जाया करती थीं। गांव के बाद अध्ययन के लिए जगदीशचंद्र बोस कलकत्ता के सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज गए।

आचार्य जे.सी. बोस कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक और कैम्ब्रिज के मिल्टन कॉलेज से एम.ए. थे। उन्होंने सन 1896 में लंदन विश्वविद्यालय से विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी। जे.सी. बोस अनेक संस्थाओं के सम्मानित सदस्य रहे। वे सन 1920 में रॉयल सोसायटी के फैलो चुने गए थे। आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने भौतिकी और जीव विज्ञान में महत्वपूर्ण कार्य किए। हम क्रमबद्ध रूप से उनके कार्यों को समझने का प्रयास करते हैं।

भौतिकी को किया समृद्ध

19वीं सदी के अंतिम दिनों में जे.सी. बोस के कार्यों ने पूरी दुनिया में भारत का नाम रोशन कराया। जनवरी 1898 में यह सिद्ध हुआ कि मारकोनी के बेतार (वायरलेस) रिसीवर का आविष्कार दरअसल जगदीशचंद्र बोस द्वारा किया गया था। मारकोनी ने इसी का एक संशोधित रिसीवर यंत्र उपयोग किया था। यह स्टील-मर्करी-कार्बन कोहेरर था, जिससे पहली बार 1901 में अटलांटिक महासागर पार बेतार संकेत प्राप्त किए गए थे। और तभी इंस्टीट्यूट ऑफ इलेक्ट्रिकल एंड इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियर्स ने जगदीशचंद्र बोस को अपने 'वायरलेस हॉल ऑफ फेम' में सम्मिलित किया। तब आचार्य जगदीशचंद्र बोस को मारकोनी के साथ बेतार संचार के पथप्रर्दशक कार्य के लिए रेडियो का सह-आविष्कारक माना गया। जे.सी. बोस के कार्यों का उपयोग आने वाले समय में किया गया। आज के रेडियो, टेलीविज़न, रडार, रिमोट सेंसिंग, माइक्रोवेव ओवन और इंटरनेट के लिए हम आचार्य बोस के ऋणी हैं।

अपने छत्तीसवें जन्मदिन पर उन्होंने एक प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शन किया कि लघु विद्युत-चुम्बकीय तरंगों द्वारा संकेत प्राप्त किए जा सकते हैं। उन्होंने इसका पहला प्रदर्शन प्रेसिडेन्सी कॉलेज में किया था और फिर कलकत्ता टाउन हॉल में। अपने प्रयोग द्वारा जे.सी. बोस ने बताया था कि विद्युत-चुम्बकीय तरंगें किसी सुदूर स्थल तक केवल

अंतरिक्ष के सहारे पहुंच सकती हैं तथा ये तरंगें किसी क्रिया का किसी अन्य स्थान पर नियंत्रण भी कर सकती हैं। असल में यह रिमोट कंट्रोल सिस्टम था।

उसी समय, दूसरी ओर स्कॉटलैंड के भौतिकविद जेम्स क्लार्क मैक्सवेल ने अपने गणितीय सिद्धान्त से विद्युत-चुम्बकीय तंरगों की उपस्थिति को सिद्ध कर दिया था। मैक्सवेल ने दर्शाया था कि विद्युत-चुम्बकीय तरंग में विद्युतीय और चुम्बकीय क्षेत्र एक-दूसरे के लंबवत व संचरण की दिशा में होते हैं। सभी प्रकार की विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा तरंगें होती हैं और तरंगों के समान इनमें आवृत्ति होती है। आवृत्ति किसी निश्चित समय में किसी निश्चित बिन्दु से तरंगों के गुज़रने की संख्या को कहते हैं।

मैक्सवेल की इस महत्वपूर्ण खोज ने विद्युत और चुम्बकत्व को एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में देखने का मार्ग प्रशस्त किया। फिर एक जर्मन वैज्ञानिक हेनरिक रुडॉल्फ हर्ट्ज़ ने पहली बार मैक्सवेल के सिद्धान्त को अपने प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया। उन्होंने दिखाया कि विद्युत-चुम्बकीय विकिरण पैदा भी किए जा सकते हैं और प्राप्त भी किए जा सकते हैं।

हर्ट्ज़ ने यह भी दिखाया कि विद्युत-चुम्बकीय तरंगें प्रकाश तरंगों की भांति परावर्तित और अपवर्तित होती हैं। लेकिन हर्ट्ज़ द्वारा प्राप्त सबसे छोटी तरंग लंबाई 66 सेंटीमीटर की थी। इन तरंगों के प्रकाशीय गुणों जैसे परावर्तन, अपवर्तन और ध्रुवण को मापने के लिए हर्ट्ज़ को बहुत बड़े उपकरणों का प्रयोग करना पड़ता था।

लेकिन जर्मनी में हेनरिक हर्ट्ज़ के प्रदर्शन के सात साल बाद ही एक अनोखा कार्य हमारे देश में हुआ। आचार्य जे.सी. बोस वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने एक ऐसे यंत्र का निर्माण किया जो सूक्ष्म तरंगें पैदा कर सकता था जिनकी तरंग लंबाई 25 मिलीमीटर से 5 मिलीमीटर तक थी। इसीलिए उनका यंत्र इतना छोटा था कि उसे एक छोटे बक्से में कहीं भी ले जाया जा सकता था। और यही थी सबसे चौंकाने वाली बात क्योंकि उस समय मारकोनी, ओलिवर लॉज और अन्य वैज्ञानिक सैकड़ों मीटर तरंग लंबाई वाली विद्युत-चुम्बकीय तरंगों द्वारा संकेत प्रेषण पर शोध कार्य कर रहे थे। आचार्य जे.सी. बोस ने दुनिया को उस समय एक बिलकुल नए तरह की रेडियो तरंग दिखाई जिनकी तरंग लंबाई 1 सेंटीमीटर से 5 मिलीमीटर के बीच थी। इन्हें आज माइक्रोवेव्स या सूक्ष्म तरंगें कहा जाता है।

विद्युत-चुंबकीय तरंगें तमाम तरंग लंबाइयों की होती हैं। इस पूरे परास को हम वर्णक्रम कहते हैं। हम जानते हैं कि हमारी आंखें केवल उन्हीं तरंग लंबाइयों की तरंगों को देख पाती हैं जिनका रंग बैंगनी से लाल तक होता है। वर्णक्रम में लाल से परे रेडियो तरंगें होती हैं और सूक्ष्म तरंगें भी। बड़ी तरंग लंबाई वाली रेडियो तरंगें पृथ्वी के ऊपर आयन मंडल से टकराकर लौटती हैं और यही कारण है कि पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक तरंगों का पहुंचना सम्भव हो पाता है। इन्हीं की बदौलत रेडियो प्रसारण संभव हुआ है।

आचार्य जे.सी. बोस ने उन्नीसवीं शताब्दी के आखिरी कुछ सालों में कलकत्ता स्थित अपनी प्रयोगशाला में 1 सेंटीमीटर से 5 मिलीमीटर तक की सूक्ष्म तरंगें पैदा की। खास तौर पर आचार्य जे.सी. बोस ने यह दिखाया कि लघु विद्युत-चुम्बकीय तरंगें एक प्रकाश पुंज की तरह परावर्तित और अपवर्तित होती हैं। उन्होंने विद्युत-चुम्बकीय तरंगों को ध्रुवित भी कर दिखाया।

उस समय एक बड़ी समस्या विद्युत-चुम्बकीय तरंगों को प्राप्त करने की थी। अभी ये निश्चित होना बाकी था कि तरंगों को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका क्या हो सकता है। जिस तरह हमारी आखें प्रकाश को देखने के लिए डिटेक्टर का काम करती हैं उसी तरह विद्युत-चुम्बकीय विकिरण को प्राप्त करने के लिए भी एक डिटेक्टर की ज़रूरत होती है। आचार्य जे.सी. बोस के सामने यह एक समस्या थी। प्रसारित संकेत को प्राप्त करना सन 1900 में एक समस्या थी। उस समय डायोड तो था नहीं जिससे संकेतों को ग्रहण किया जा सके। तो फिर इसका समाधान एक कोहेरर के रूप में मिला जो संकेतों को एंटिना के ज़रिए ग्रहण कर सकता था।

रिसीवर एक ऐसा यंत्र है जिसकी सहायता से एंटिना द्वारा रेडियो तरंगों को प्राप्त किया गया। इसमें कोहेरर का काम था कि एसी सिग्नल को डीसी सिग्नल में इस तरह

बदल दे कि उससे एक मोर्स प्रिंटर और ईयरफोन काम करने लगे। रिसीवर के संचालन का मूल आधार था धातु के कणों का आपस में एकत्र होना। जब रेडियो आवृत्ति उन कणों पर डाली जाती है तब विद्युत धारा का प्रवाह आसान हो जाता है।

समस्या यह थी कि रेडियो संकेतों के हटने के बाद भी रिसीवर में धारा का प्रवाह जारी रहता था। होना तो यह चाहिए कि संकेत हटते ही रिसीवर अगला संकेत प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाए। लगातार संकेत प्राप्त होते रहें इसके लिए रिसीवर को थोड़ा झटका देना पड़ता था। इस समस्या को सुलझाने के लिए 1890 के दौरान फ्रांसीसी भौतिकविद एडुआर्ड ब्रैन्ली ने रिसीवर का आविष्कार किया था। ब्रैन्ली के बाद सर ऑलिवर लॉज ने रिसीवर का एक उन्नत रूप बनाया। लेकिन आचार्य जे.सी. बोस की नज़रों में और बेहतर करने की गुंजाइश थी।

अच्छे संचार के लिए एक अच्छे डिटेक्टर की ज़रूरत होती है। इसलिए आचार्य जे.सी. बोस ने धातु की कतरनों वाले डिटेक्टर की जगह एक बेहतर स्पाइरल स्प्रिंग कोहेरर बनाया। इस यंत्र में छोटे-छोटे स्प्रिंग एक-दूसरे के साथ परस्पर दबाव से ऐसे जुड़े होते हैं कि जब विद्युत-चुम्बकीय तरंग इसकी संवेदनशील सतह पर पड़ती है तो इसकी प्रतिरोधक शक्ति अचानक कम हो जाती है और धारा प्रवाह को धारामापी में देखा जा सकता है। स्प्रिंग पर हल्के दबाव से ही डिटेक्टर की दक्षता बढ़ाई जा सकती है। इसलिए यह डिटेक्टर ब्रैन्ली के डिटेक्टर से बेहतर माना गया।

फिर आया इससे भी उन्नत डिटेक्टर। आचार्य जे.सी. बोस ने सोचा तो क्यों ना गैलेना का प्रयोग किया जाए। गैलेना लेड सल्फाइड के क्रिस्टल्स होते हैं जो इसके लिए बिलकुल उचित साबित हुए। आचार्य जे.सी. बोस ने एक संवेदनशील गैलेना पॉइंट कॉन्टैक्ट डिटेक्टर बनाया जिसे रेडियो तरंगों का पहला अर्धचालक रिसीवर माना जाता है। इसके बाद भी आचार्य जे.सी. बोस ने रिसीवर पर अपना शोधकार्य जारी रखा और अन्ततः एक ऐसा रिसीवर प्राप्त करने में सफल भी हो गए जिसे बार-बार झटके नहीं देने पड़ते थे। इस उत्कृष्ट वैज्ञानिक यंत्र में धातु की एक छोटी प्याली में पारा भरा होता है जो तेल की पतली परत से ढंका होता है। इसे आयरन-मर्करी-आयरन कोहेरर कहा गया। इस उपकरण के ऊपर लोहे की एक छोटी डिस्क लटकी हुई थी, जिसे एक पेंच की मदद से ऊपर नीचे किया जा सकता था। डिस्क तेल की पतली परत से ढंके पारे को बस छू पाती थी। रेडियो फ्रिक्वेन्सी सिग्नल तेल की उस पतली परत को बस इतना ही भेद पाता था कि धारा प्रवाह स्थापित हो जाए।

ऐसे कोहेरर जिनको झटके नहीं देने पड़ते थे उन्हें ऑटो-कोहेरर कहा गया। और यही वह समस्या थी जिसको आचार्य जे.सी. बोस ने दुनिया के लिए हल किया। यह उन दिनों के इस्तेमाल होने वाले दूसरे रिसीवरों से कहीं बेहतर था। यही वह ऑटो कोहेरर था जिसका उपयोग मारकोनी ने अपने महासागर पार बेतार संचार में किया था।

इतना कुछ कर लेने के बाद बोस चुपचाप नहीं बैठे। उन्होंने सोचा कि यह संकेत अब और ज़्यादा दूर तक क्यों नहीं पहुंच सकता; जैसे प्रेसिडेन्सी कॉलेज से एक मील दूर उनके घर तक? लेकिन इससे पहले कि वे ऐसा करते उन्हें ब्रिटिश एसोसिएशन के आमंत्रण पर इंग्लैण्ड जाना पड़ा जहां उन्हें लिवरपूल सेशन में शामिल होना था।

लिवरपूल में प्राप्त ख्याति से आचार्य जे.सी. बोस को फिर रॉयल संस्थान में फ्रायडे इवनिंग लेक्चर के आमंत्रण मिले। इन्हीं व्याख्यानों के दौरान जब जे.सी. बोस ने अपने उपकरणों का खुला प्रदर्शन किया तो कई बुद्धिजीवी हैरान रह गए। क्योंकि उन्होंने अपने आविष्कारों से व्यापार करने में कोई रुचि नहीं दिखाई।

उनकी एक अमरीकी दोस्त सारा बुल ने समझाया-बुझाया तब वे अपने गैलेना रिसीवर के पेटेंट के लिए तैयार हो गए। अर्जी दाखिल की गई और 29 मार्च 1904 को पेटेंट मिला। लेकिन बोस ने अपने पेटेंट अधिकारों को मानने से इन्कार किया और पेटेंट की अवधि बीत जाने दी।

जीव विज्ञान

कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी कॉलेज में भौतिक विज्ञान पढ़ते हुए जगदीशचंद्र बोस ने एक वैज्ञानिक बनने का निर्णय

लिया। जैविकी से लगाव होते हुए भी जगदीशचंद्र बोस की रुचि भौतिक विज्ञान में बढ़ने लगी और इसका मुख्य कारण था सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज में फादर लैफों के भौतिक विज्ञान के रोचक व्याख्यान। लेकिन दिल ही दिल में जीव विज्ञान के अध्ययन की लालसा भी थी। इसीलिए जब फैसले का समय आया तो इंग्लैण्ड जाते वक्त डॉक्टरी पढ़ने की ही सोची। लंदन में एक ही साल गुज़रा था कि उन्हें बार-बार बुखार आने लगा। अपने प्रोफेसर की सलाह पर उन्होंने डॉक्टरी की पढ़ाई छोड़ केम्ब्रिज में दाखिला लिया और विज्ञान पढ़ने लगे। अन्ततः उन्होंने भौतिकी को अपनाया क्योंकि वे लॉर्ड रैले से बहुत प्रभावित थे। भौतिक विज्ञान में शोध करते हुए आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने देखा कि रासायनिक पदार्थों और सजीवों के व्यवहारों में कोई न कोई रिश्ता ज़रूर है।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी का अंत होते-होते जगदीशचंद्र बोस की शोध रुचि विद्युत-चुम्बकीय तरंगों से हट कर जीवन के भौतिक पहलुओं की ओर होने लगी, जिसे आज जैव भौतिकी कहते हैं।

अगले तीस सालों में जगदीशचंद्र बोस ने पादप कोशिकाओं पर विद्युतीय संकेतों के प्रभाव का अध्ययन किया। उनके प्रयोग इस तथ्य की ओर इशारा कर रहे थे कि सम्भवतः सभी पादप कोशिकाओं में उत्तेजित होने की क्षमता होती है। ठंड, गर्मी, काटे जाने, स्पर्श और विद्युतीय उद्दीपन के साथ-साथ बाहरी नमी के कारण भी पौधों में विद्युतीय संकेत उत्पन्न हो सकते हैं।

असल में इस चिन्तन का आधार था उनका रिसीवर सम्बंधी शोध कार्य। उन्होंने देखा था कि रिसीवर की दक्षता में कमी तब आती है जब वे बार-बार संकेत प्राप्त करते हैं। उनके अनुसार ऐसा होने पर रिसीवर थक जाते थे। और जीवों में भी ठीक ऐसा ही होता है। उन्होंने ऐसे संवेदनशील यंत्र बनाए जो पादपों की अति सूक्ष्म जैविक क्रियाओं को भी रिकॉर्ड कर सकते थे, चाहे वे क्रियाएं भौतिक, रासायनिक, यांत्रिक या विद्युतीय हों।

आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने 1901 से पौधों पर विद्युतीय संकेतों के प्रभाव का अध्ययन किया और इस कार्य के लिए जिन पौधों का उन्होंने चयन किया वे थे छुई-मुई (*माइमोसा प्यूडिका*) और शालपर्णी (*डेस्मोडियम गाइरेंस*)।

आचार्य जगदीशचंद्र बोस को विश्वास था कि सजीवों और निर्जीवों के इस संपर्क में विद्युत-चुम्बकीय तरंगों का एक विशेष स्थान है। जगदीशचंद्र बोस ने कुछ ऐसे पौधों का चयन किया जो उद्दीपन मिलने पर पर्याप्त रूप से उत्तेजित हो सकते थे। छुई-मुई को लाजवन्ती भी कहते हैं। अगर उसकी पत्तियों को छुएं तो वे एक-दूसरे पर झुकने लगतीं हैं। इस प्रतिक्रिया को तकनीकी भाषा में स्पर्शानुवर्तन कहते हैं। इसने जगदीशचंद्र बोस को सोचने पर विवश कर दिया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसी प्रतिक्रिया विद्युत विभव के कारण होती है। इस उपकरण पर काम करते हुए जिसे स्पन्दन रिकार्डर कहा जाता है जगदीशचंद्र बोस इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये पत्तियां जब मुड़ती हैं तो इसका विद्युतीय प्रभाव तनों तक भी पहुंचता है और जब यह विद्युतीय संकेत ऊपर और नीचे की दिशाओं में चलते हैं तो दूसरी पत्तियां भी मुड़ने लगती है। आज हम जानते हैं कि विद्युत विभव 20 से 30 मिलीमीटर प्रति सेकेन्ड की रफ्तार से आगे बढ़ता है।

एक दूसरा अद्भुत पौधा शालपर्णी यानी इंडियन टेलीग्राफ प्लांट है। यह पौधा अपनी पत्तियों में एक अद्भुत घुमाव पैदा करता है। ध्यान से देखने पर इसकी छोटी पत्तियों को हम नाचते हुए पाते हैं। आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने यह निश्चित किया कि विद्युतीय दोलन और स्वतः गति का मेल हम इंडियन टेलीग्राफ या *डेस्मोडियम गायरेन्स* में देख सकते हैं। जिसकी वजह से इसकी निचली छोटी पत्तियां ऊपर से नीचे घुमती हैं। आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने *डेस्मोडियम गायरेन्स* के विद्युतीय स्पंदन की तुलना जीवों की हृदय गति से करने के लिए स्पन्दन रिकार्डर का प्रयोग किया।

जगदीशचंद्र बोस ने आगे बताया कि पौधों में उद्दीपन का प्रभाव टर्गर प्रेशर यानी स्फीती दबाव और कोशिकाओं के फैलाव से जुड़ा हुआ है। पौधों में स्वतः गति के अध्ययन के अलावा आचार्य जगदीशचंद्र बोस और भी आश्चर्यचकित हुए जब उन्होंने पाया कि पौधों में धीमी गति से हो रहे विकास को भी रिकॉर्ड किया जा सकता है।

औसतन एक सेकन्ड में पौधा एक इंच का एक सौ हज़ारवां हिस्सा बढ़ता है। तो इसे नापा कैसे जाए? यह वृद्धि दर बहुत ही कम है। आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने खुद ही एक अत्यन्त संवेदी यंत्र बनाया, जो कि इस धीमी गति से हो रही वृद्धि को नाप सकता था और उन्होंने उसे क्रेस्कोग्राफ कहा। बोस द्वारा बनाए गए वृद्धिमापी यानी क्रेस्कोग्राफ का प्रतिरुप कोलकाता स्थित बोस इंस्टिट्यूट में देखा जा सकता है। यहां वे विभिन्न प्रयोगों के लिए पौधे लगाते थे। यह उपकरण पौधे की वृद्धि को स्वतः दस हज़ार गुना बढ़ाकर रिकॉर्ड करने की क्षमता रखता था। पौधे सीधी रेखा में नहीं बढ़ते। ये टेढ़े-मेढ़े बढ़ते हैं। इसलिए बिन्दुओं की लाइन सीधी नहीं बल्कि टेढ़ी होती है।

घर्षण को कम करने के लिए आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने कांच के टुकड़े इस तरह लगाए थे कि वो आगे पीछे और दाएं-बाएं चल सकें। उस उपकरण का प्रयोग पौधों पर तापमान और प्रकाश के प्रभाव के अध्ययन के लिए भी हुआ। उन्होंने पौधे की वृद्धि में ज़हर और विद्युतीय प्रवाह का भी असर देखा। इस उपकरण का प्रदर्शन पूरी दुनिया में जगदीशचंद्र बोस ने सन 1914 से शुरू किया था।

ऐसे प्रयोग जगदीशचंद्र बोस ने जब कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड में दिखाए तो वहां के वैज्ञानिक अचंभित रह गए। क्योंकि दुनिया में कहीं भी किसी ने इससे पहले जीव विज्ञान में ऐसा कार्य नहीं किया था। इस प्रसंग में एक दिलचस्प बात हुई। जगदीशचंद्र बोस ने यह दर्शाना चाहा कि पौधों में हमारी तरह दर्द का एहसास होता है, उन्हें भी तकलीफ होती है, अगर उन्हें काटा जाए और अगर उनमें ज़हर डाल दिया जाए तो वे मर भी सकते हैं। बहुत सारे वैज्ञानिक और गणमान्य लोगों के समक्ष जगदीशचंद्र बोस ने एक पौधे में ज़हर का एक इंजेक्शन लगाया और कहा कि अभी आप सभी देखेंगे कि इस पौधे की मृत्यु कैसे होती है। जगदीशचंद्र बोस ने प्रयोग शुरू किया, ज़हर का इंजेक्शन भी लगाया लेकिन पौधे पर कोई असर नहीं हुआ। वे परेशान ज़रूर हुए लेकिन अपना संयम बरतते हुए कहा कि अगर इस ज़हरीले इंजेक्शन का एक सजीव अर्थात इस पौधे पर कोई असर नहीं हुआ तो दूसरे जानदार यानी मुझ पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। जैसे ही जगदीशचंद्र बोस खुद को इंजेक्शन लगाने चले तो अचानक दर्शकों में से एक आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा 'मैं अपनी हार मानता हूं', मिस्टर जगदीशचंद्र बोस, मैंने ही ज़हर की जगह एक मिलते-जुलते रंग का पानी डाल दिया था। जगदीशचंद्र बोस ने फिर से प्रयोग शुरू किया और पौधा सभी के सामने मुरझाने लगा।

पौधों में वृद्धि का जो पैटर्न जे. सी. बोस ने रिकॉर्ड किया था, आज आधुनिक विज्ञान के तरीकों से उसकी पुष्टि हुई है। पौधों की वृद्धि और अन्य जैविक क्रियाओं पर समय के प्रभाव के अध्ययन की बुनियाद जे. सी. बोस ने डाली थी। आज इसे क्रोनोबायोलॉजी कहते हैं।

क्रोनोबायोलॉजी में जीवों की विभिन्न जैविक प्रक्रियाओं के लयात्मक सामंजस्य का अध्ययन किया जाता है। यह जीव विज्ञान को अभियांत्रिकी, स्वास्थ्य और कृषि से भी जोड़ता है। ऐसी उत्कृष्ट वैज्ञानिक खोज और अध्ययन के लिए जे. सी. बोस को 1920 में रॉयल सोसायटी का सदस्य चुना गया।

एक अन्य अध्ययन क्षेत्र जिसने जे.सी. बोस को आकर्षित किया, वह था पौधों में जड़ों से तने और पत्तों तक पानी का चढ़ना। दरअसल पौधे जो पानी सोखते है वह केवल पानी नहीं बल्कि उसमें अनेक घुलित पदार्थ भी होते हैं। और यही कारण है कि इस प्रकिया को पानी का चढ़ाव न कहकर रस का चढ़ाव अर्थात रसारोहण कहते हैं। ज़ाइलम पौधों के ऐसे ऊतक हैं जिनसे तरल का बहाव संभव है और यही वाहक है रसारोहण का। इस क्रिया में पत्तियों से पानी का वाष्पन, पानी के अणुओं के बीच लगने वाला ससंजन बल और केशिका बल अहम भूमिका निभाते हैं।

1915 में प्रेसिडेन्सी कॉलेज से सेवानिवृत्ति के पश्चात जगदीशचंद्र बोस को अपना शोध कार्य जारी रखने की अनुमति भी मिली। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी प्रयोगशाला को अपने घर पर स्थानांतरित कर दिया जो विज्ञान महाविद्यालय के बगल में था। दो ही साल बाद यानी 1917 में अपने घर में वे एक प्रयोगशाला स्थापित करने में सफल हुए। यह शोध केंद्र था उत्तरी कलकत्ता में जिसे अब आचार्य प्रफुल्लचंद्र

मार्ग कहा जाता है। बोस इंस्टिट्यूट की स्थापना 30 नवम्बर 1917 को हुई। आचार्य जगदीशचंद्र बोस अपने जीवन की अंतिम घड़ी तक इस संस्था के निदेशक रहे। उनका देहान्त 1937 में हुआ। आचार्य जे. सी. बोस की तरह बोस इंस्टिट्यूट भी विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक शोध कार्यों में संलग्न है। बोस इंस्टिट्यूट में आज जो कुछ भी हो रहा है उसकी कल्पना आचार्य जे. सी. बोस के अथक प्रयासों के बिना नहीं की जा सकती। उन्होंने न केवल देशवासियों के लिए एक नई राह रोशन की बल्कि अगली पीढ़ी के मन में विज्ञान की ललक जगाई। ***(स्रोत फीचर्स)***